देशज शिक्षा : बदलती छवियाँ

सी एन सुब्रह्मण्यम

हमने पिछले लेखों में जिन कलाकृतियों के बारे में चर्चा की थी, उनमें से कई भिन्न संस्कृतियों के मेल-मिलाप की पैदाइश थीं। भिन्न संस्कृतियों के मिलने से चीज़ों को देखने व चित्रण करने के नए नज़रिए विकसित हुए। उदाहरण के तौर पर कुषाणकालीन मथुरा का शिल्प पटल और मुग़लकालीन लघु चित्रों को लिया जा सकता है। इस लेख में हम ऐसे ही एक और संक्रमण और सम्मिश्रण के दौर की कलाकृतियों को देखेंगे, जो इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी (संक्षेप में 'कम्पनी') के औपनिवेशिक शासन की स्थापना के दौर में बने।

1750 से 1850 के दौर में मुग़ल शासन समाप्ति की ओर था और बंगाल, बिहार, मद्रास आदि में कम्पनी का शासन स्थापित हो रहा था। इस दौर में अनेक अँग्रेज़ अधिकारी जो भारत आए, वे भारतीय लोग, समुदाय, धर्म, संस्कृति, स्थापत्य आदि में रुचि लेते थे। वे उनके बारे में जानना भी चाहते थे, मगर उनके अपने सवाल और नज़रिए थे जो इस खोजबीन के लिए महत्त्वपूर्ण थे। वे इन सभी के बारे में जानकारी हासिल करने के साथ-साथ उनका विज़ुअल दस्तावेजीकरण भी चाहते थे, ठीक उसी तरह जिस तरह आज के सैलानी अपनी यात्रा स्मृतियों को कैमरे की मदद से दर्ज़ करना चाहते हैं। मगर उस दौर में कैमरे का आविष्कार नहीं हुआ था, सो रंगों व लकीरों से चित्रांकन ही एक मात्र उपलब्ध तरीक़ा था। पर चित्र बनाए कौन? कई अँग्रेज़ी चित्रकार भी भारत आए, मगर जिस मात्रा में चित्रों की माँग थी उसकी तुलना में वे बहुत ही कम थे। तो हुआ यह कि अनेक भारतीय चित्रकार जो मुग़ल और अन्य देशज (जैसे- दखनी) शैली में प्रशिक्षित थे, वे अब इस काम में जुट गए। मगर उनके आश्रयदाता या पैट्रन अँग्रेज थे जिनकी कलात्मक दृष्टि यूरोपीय पुनर्जागरण के कलाबोध से प्रभावित थी। उसमें ख़ासकर रेखीय दृष्टिकोण या लीनियर पर्सपैक्टिव पर वे ज़ोर देते थे— यानी चित्रों में गहराई दर्शाने के लिए सामने की चीज़ों को बड़ा दिखाना और पीछे की चीज़ों को एक विशेष अनुपात में छोटा करते जाना। यह मुग़ल कलाकारों के लिए नया था। और फिर इस दृष्टिकोण में एक तरह का यथार्थवाद भी था जिसमें लोग व चीज़ें उसी अनुपात में दिखें जो वास्तविक हों और मुग़ल कलाकार तो बादशाह को या प्रमुख देवता को बाक़ी सबसे बड़ा दिखाने के आदी थे। इसके अलावा पूर्व-आधुनिक यूरोपीय शैली की एक और विशेषता थी, शेडिंग यानी रंगों को गहरा या हल्का करना ताकि जिन भागों पर रोशनी पड़े वह हल्का हो और जहाँ रोशनी कम पड़े वहाँ रंग गहरा हो। इसके माध्यम से चेहरों में भी गहराई और त्रिआयामिता को दिखाया जा सकता था। तो कम्पनी के अधिकारी चाहते थे कि इन तकनीकों का उपयोग करते हुए चित्र बनें— आख़िर वे इन्हें अपने देश ले जाकर अपने दोस्तों व रिश्तेदारों के साथ साझा जो करेंगे और बताएँगे कि वे किस तरह के लोगों पर फ़तह करके आए हैं। इस प्रकार मुग़ल लघु चित्रकारों ने अपनी लघु चित्र शैली में इन यूरोपीय तकनीकों को शामिल करते हुए एक नई शैली का विकास किया जिसे आज 'कम्पनी

क़लम' कहा जाता है। इस शैली में आमतौर पर चित्र आकार में छोटे ही होते थे, लघु चित्रों की तरह, मगर इसमें इन तीन तरीक़ों को भी शामिल किया गया था। इस तरह चित्रकारी के मामले में देशी कलाकारों और अँग्रेजों के बीच एक संवाद हुआ।

एक दूसरे स्तर का संवाद था विषयवस्तु को लेकर। अँग्रेजों की रुचि बादशाहों, नवाबों, महाराजाओं या फिर देवी-देवताओं में अपेक्षाकृत कम थी और उनकी रुचि का मुख्य केन्द्र था जनजीवन। भारत के अलग-अलग तरह के लोग कौन हैं, वे दिखते कैसे हैं, पहनते क्या हैं, काम क्या करते हैं, कैसे करते हैं, किस तरह के घरों में रहते हैं, वग़ैरह-वग़ैरह। (उन्हीं दिनों यूरोप में भी इस तरह के पारम्परिक व्यावसायिकों में रुचि पैदा हो रही थी क्योंकि वे उद्योगीकरण के चलते तेज़ी से लुप्त होते जा रहे थे। उनके बारे में लघु पुस्तकें बन रही थीं।) जितनी तरह के लोग दिखें उन सबकी तस्वीर- हू बहू नहीं, बल्कि उन्हें ख़ास काम करने की स्थिति में, उनकी पत्नी के साथ, उनके घरों या व्यावसायिक स्थलों की पृष्ठभूमि में दिखाया जाना था। चित्र में उनके कपड़े, कच्चा माल, औज़ार वग़ैरह दिखाना ज़रूरी था। भारत के चित्रकार उन लोगों को भली भाँति जानते थे और वे उनका चित्रण अलग-अलग सन्दर्भों में मुगल चित्रों में करते थे। लेकिन अब अँग्रेज़ी आश्रयदातों के निर्देशन में इन लोगों पर केन्द्रित चित्र बनने लगे।

अँग्रेजों की रुचि बादशाहों, नवाबों, महाराजाओं या फिर देवी-देवताओं में अपेक्षाकृत कम थी और उनकी रुचि का मुख्य केन्द्र था जनजीवन। भारत के अलग-अलग तरह के लोग कौन हैं, वे दिखते कैसे हैं, पहनते क्या हैं, काम क्या करते हैं, कैसे करते हैं, किस तरह के घरों में रहते हैं, वग़ैरह-वग़ैरह।

एक तीसरे तरह का संवाद भी इन कलाकारों व अँग्रेजों के बीच हो रहा था। अँग्रेजों के कुछ ख़ास सवाल और रुचि के विषय थे। शिक्षा के सन्दर्भ में उसकी व्यापकता, शिक्षण के विषय, शिक्षक की योग्यता और मानदेय आदि को लेकर उनकी दिलचस्पी तो थी ही मगर उनके सामने कुछ ख़ास सवाल भी थे। मसलन, शिक्षक कक्षा को सँभालते कैसे हैं? विद्यार्थियों को अनुशासित करने के उनके तरीक़े क्या हैं? वग़ैरह। ये बातें उनके लिए महत्त्वपूर्ण इसलिए भी थीं क्योंकि उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार शुरू हो रहा था और शिक्षा के ख़र्च का वहन कौन करेगा, कितने बच्चों पर एक शिक्षक की ज़रूरत है, उसके ख़र्चे का गणित क्या होगा, वग़ैरह महत्त्वपूर्ण सवाल उठ रहे थे। सार्वजनिक शिक्षा का एक मुख्य ध्येय निम्न वर्ग के बच्चों को अनुशासित करना था, इसीलिए दण्ड, अनुशासन और नैतिक शिक्षा उनके लिए बहुत अहम थे। और ये सभी भारतीय सन्दर्भ में जानने-समझने और चित्रण के विषय बने।

कई अधिकारियों का यह भी मानना था कि शासक होने के बतौर भारतीयों को शिक्षित और सुसभ्य बनाना इंग्लैण्ड का दायित्व है। इसी वजह से यहाँ किस तरह की शिक्षा है व उसमें क्या बदलाव करना है, यह भी चर्चा का विषय बना। बंगाल, मद्रास और बम्बई तीनों प्रेसीडेंसियों में देशज शिक्षा के अध्ययन को महत्त्व दिया गया था- बंगाल में एडम और ग्रांट डफ़ की रिपोर्ट, मद्रास में थामस मनरो द्वारा और बम्बई में एल्फ़िन्स्टन द्वारा करवाए गए अध्ययन इसके प्रमाण हैं। इनपर शिक्षा साहित्य में काफ़ी चर्चा भी है। लेकिन उसी दौर में बनवाए गए 'कम्पनी क़लम' के चित्रों, जिनमें देशज स्कूलों का चित्रण है, के बारे में कम ही चर्चा हुई है।

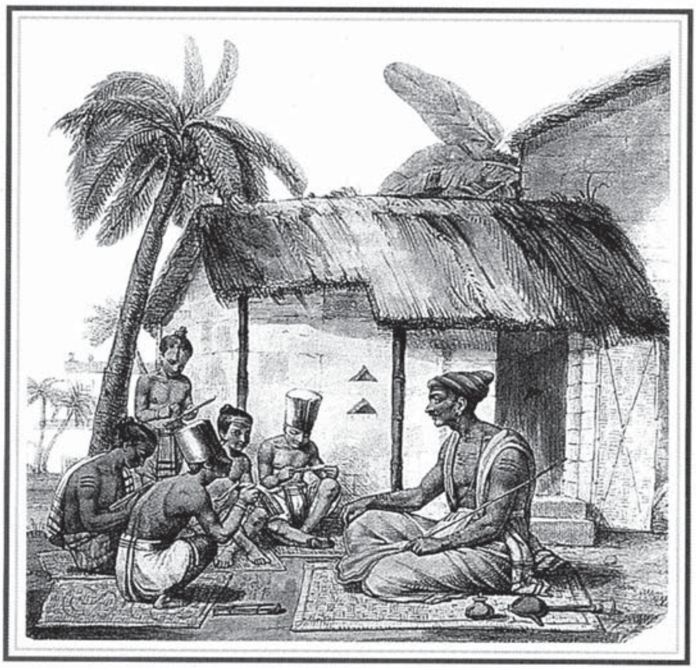
मुझे 'कम्पनी क़लम' के जो शिक्षण सम्बन्धित चित्र देखने को मिले हैं वे कुछ बाद के समय के हैं यानी 1830 से 1860 के बीच के।

इनके अलावा कुछ प्रारम्भिक छायाचित्र (फोटो) और देशज चित्र भी हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

मद्रास और मैसूरू में

हम कुछ दक्षिण भारतीय छवियों से शुरुआत करेंगे। ये मद्रास और मैसूरू के आसपास बने चित्र हैं। पहला चित्र एक देशज पाठशाला को दर्शाता है जिसे एक ब्राह्मण शिक्षक संचालित कर रहा है (चित्र 1)। घर के बाहर खुले में ही शाला चल रही है जो कुछ विचित्र बात है। आमतौर पर यह घर के बरामदे में चलती थी। इसमें कुल पाँच छात्र ही हैं जिनमें से दो शायद हैसियतमन्द परिवार से हैं और वे ऊँची टोपी और सफ़ेद धोती पहने हैं। ये टोपियाँ विजयनगर साम्राज्य की राजकीय शैली की हैं, और आश्चर्य की बात है कि यह शैली उन्नीसवीं सदी तक क़ायम रही। बाक़ी तीन छात्र रंगीन धोतियाँ पहने हैं और उनका सिर ढँका नहीं है, मगर चुटिया और भभूत लगाए ललाट दिख रहे हैं। ये भले ही ऊँचे दर्जे के न हों लेकिन फिर भी दलित या उसके समकक्ष समाज के नहीं लगते हैं। गुरुजी और सभी छात्र ज़मीन पर चटाई बिछाकर बैठे हैं व सबकी अपनी-अपनी चटाई है। हाँ, छात्रों की छोटी और गुरुजी की कुछ बड़ी। छात्र ताड़पत्र से बनी पुस्तक पढ़ रहे हैं। गुरुजी के पास कोई ताड़पत्र नहीं है, शायद उन्हें सब कण्ठस्थ होगा। हाँ, हाथ में लम्बी छड़ी ज़रूर है और पास में हुक़्क़ा भी रखा हुआ है। वे चिलम के शौक़ीन रहे होंगे। सभी छात्र अपने-अपने ताड़पत्र से पढ़ रहे हैं और उनमें से एक छात्र ने नीचे रेत बिछाकर उसपर कुछ लिखा है। लिखना सीखने का प्रथम चरण था, रेत पर लिखना। ताड़पत्र पर लिखने के लिए ख़ास तैयारी की ज़रूरत होती है। लिखने वाला छात्र शायद गुरुजी से बातचीत कर रहा है, या कोई पाठ पढ़कर सुना रहा है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस छात्र के अलावा बाक़ी चारों की नज़रें शिक्षक पर नहीं टिकी हैं बल्कि अपनी पुस्तक पर हैं। गुरुजी का घर छोटा-सा है। अपने पड़ोसी के घर की तुलना में काफ़ी छोटा। हालाँकि यह एक यथार्थवादी चित्र है मगर इसके संयोजन में पारम्परिक दृष्टि दिखती है। लगभग आधे चित्र पर गुरुजी हावी हैं और दोनों हिस्सों के बीच बरामदे का खम्भा खड़ा है। बाक़ी पात्रों की तुलना में गुरुजी कुछ आगे बैठे हैं जिसके कारण उनका आकार भी बड़ा दिख रहा है।

इस चित्र को ग़ौर से देखें तो पाएँगे कि यह एक अनुशासन-केन्द्रित शाला नहीं है। बच्चों के हावभाव और क्रियाकलाप से स्पष्ट है कि वे सहजता के साथ अध्ययन कर रहे हैं। स्वाध्याय



चित्र 1. छात्र और गुरुजी (istock इमेज गैलरी)

का माहौल है। शिक्षक के हाथ में छड़ी है मगर वह इस्तेमाल होते हुए नहीं दिख रही है। न उनका तेवर आक्रामक है। एक तरह से यह चित्र एडम, मनरो और एल्फ़िन्स्टन की सोच के दायरे में है। इसके विपरीत हम दो और तस्वीरें देखेंगे जो मैसूरू में लगभग 1850 के आसपास बनाई गई थीं।

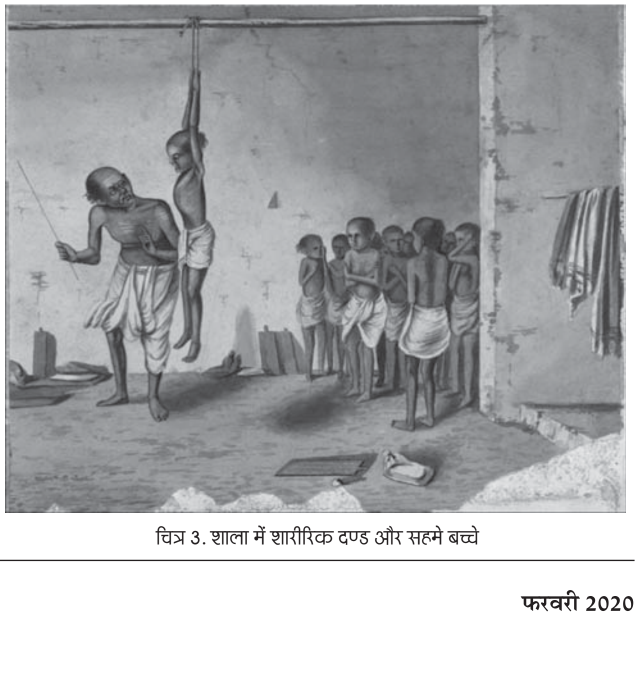
इन दो चित्रों (चित्र 2 और 3) का मक़सद है देशज शालाओं में प्रचलित शारीरिक दण्ड की विधियों को दर्शाना। 1844 में डॉ. अलेक्ज़ांडर डफ़ ने एडम की रिपोर्ट के ख़िलाफ़ अपनी दलील में देशज स्कूलों में दिए जाने वाले दण्ड और उसके बच्चों पर होने वाले कुप्रभाव की चर्चा की थी। ऐसा लगता है कि इन दो चित्रों को कहीं उस रिपोर्ट को ध्यान में रखकर बनाया गया है। देशज शालाओं के शिक्षण में विषय की नीरसता और अप्रासंगिकता पर टिप्पणी करने के बाद डफ़ लिखते हैं :



चित्र 2. एक ग्रामीण शाला में शिक्षण कार्य और दण्ड (मैसूरू, 1850)

"यदि शुरू से अन्त तक शिक्षण निष्क्रिय, बेजान, घिसा-पिटा और हमेशा एक-सा हो और यही प्रक्रिया दिलोदिमाग़ को पूरी ताक़त से अपने ढंग में ढालती रहे, तो अनुशासन की योजना भय के राज पर ही आधारित हो सकती है। और फिर करुणा, धैर्य, उदारता, प्यार आदि के लिए कोई जगह नहीं रहती। तब भय ही पहला, अन्तिम और एकमात्र प्रयोजन बन जाता है, और दण्ड ही पहला, अन्तिम और एकमात्र उद्दीपक। दण्ड देने के अलग-अलग तरीक़े ढूँढ़ने में बहुत दिमाग़ लगाया जाता है। शिक्षक हमेशा छड़ी से लैस रहता है जो उसके व्यवसाय के लिए उतनी ही ज़रूरी है जैसे– देखने के लिए आँखें, और सुनने के लिए कान; और यह छड़ी वफ़ादारी से निरन्तर उसकी सेवा करती रहती है।"

वे लगभग 15 तरह के शारीरिक दण्डों का वर्णन करते हैं, जिसमें से एकाध यहाँ प्रासंगिक हैं- लड़के को एक टाँग पर खड़ा रहना पड़ता है और अगर वह हिले-डुले या टाँग नीचे कर ले तो उसे कठोर तरीक़े से प्रताड़ित किया जाता है।... लड़के के हाथों को बाँधकर उसे छत के मियाल से उल्टा लटकाया जाता है और छड़ी से पीटा जाता है।[1] चित्र 2 में एक



चित्र 3. शाला में शारीरिक दण्ड और सहमे बच्चे

लड़का एक टाँग पर खड़ा होकर अपनी उँगली से ज़मीन पर कुछ लिखने की कोशिश कर रहा है। चित्र 3 में लड़के के हाथ बाँधकर मियाल से लटकाकर शिक्षक छड़ी से मार रहे हैं और बाक़ी बच्चे सहमे हुए खड़े देख रहे हैं। ऐसे क्रूर दण्ड डफ़ या चित्रकार की महज़ कल्पना नहीं हैं, यह हमें कई समकालीन आत्मकथाओं से भी जानने को मिलता है। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध तमिल विद्वान उ वे सामिनाथ अय्यर ने अपनी आत्मकथा में अपने प्रारम्भिक शालेय अनुभवों का बहुत बारीक़ी से तथा हास्य के साथ वर्णन किया है। वे सीधे कहते हैं कि बच्चों के शाला त्यागने के पीछे दण्ड एक महत्त्वपूर्ण कारण था।

बहरहाल चित्र 2 में दण्ड के अलावा भी कई और बातें हैं जो हमें आकर्षित करती हैं। पहली है शाला का वास्तु– एक दीवार के दोनों तरफ़ ढलवाँ घास-फूस की छत है जो लकड़ी के खम्भों पर टिकी है। इसी की छाया में शाला लग रही है। शाला के फ़र्श और मैदान में कोई अन्तर नहीं दिख रहा है। मिट्टी पर चटाई बिछाकर गुरुजी बैठे हैं, मगर वे बच्चों की ओर अपनी पीठ दिखाए बैठे हैं। वे ताड़पत्र पर कुछ पाठ लिख रहे हैं, शायद उनकी बूढ़ी आँखों को अधिक रोशनी की ज़रूरत थी। उनके सामने एक बच्चा किसी ताड़पत्र पुस्तक को हाथ में लिए झुक कर पढ़ रहा है। ताड़पत्र की लिखावट को पढ़ने के लिए शायद आँखों के नज़दीक रखना पड़ता था। गुरुजी के बगल में एक तन्दुरुस्त छात्र मिट्टी पर अपनी उँगली से कुछ लिख रहा है। शायद वह सामने रखे ताड़पत्र की नकल उतार रहा है। गुरुजी के पीछे बीस से अधिक बच्चे बैठे हैं और अपनी-अपनी पुस्तक से पढ़ रहे हैं। रोचक बात यह है कि यहाँ गुरुजी की भूमिका पढ़ाने की नहीं, बल्कि पढ़ने की सामग्री उपलब्ध कराने की है, जिसे आजकल हम सुविधादाता (फैसिलिटेटर) कहते हैं। गुरुजी ताड़पत्र पर लिख-लिख कर दे रहे हैं और बच्चे उसका वाचन कर रहे हैं, या मिट्टी पर नकल कर रहे हैं। छात्रों के पहनावे और माथे के टीकों से समझ में आता है कि वे अलग-अलग उम्र और सम्प्रदाय जैसे– शैव, वैष्णव, आदि के हैं। तो कुल मिलाकर लगता है कि यह एक ग्रामीण शाला है जो एक दीवार के साए चलती है, और एक गुरुजी पर 25 के लगभग छात्र हैं। शिक्षण में स्वाध्याय पर ज़ोर है और गुरुजी एक तरह से हाशिए पर हैं।

अलेक्ज़ांडर डफ़ ने माना कि इस तरह के दण्ड न केवल अमानवीय हैं बल्कि वे बच्चों को उद्दण्ड बना देते हैं और उनमें शिक्षकों के प्रति दुर्भावना उत्पन्न कर देते हैं। वे उन तमाम तरीक़ों का भी वर्णन करते हैं जो छात्र गुरुजी से बदला लेने के लिए आजमाते हैं (जैसे— उनके हुक़्क़े में मिर्ची भर देना, रात को अँधेरे में पीटना, और काली माँ से प्रार्थना करना कि गुरुजी को जल्दी ऊपर ले जाएँ)।

चित्र 3 विशेषकर गुरुजी के ख़ौफ़ और शारीरिक दण्ड पर केन्द्रित है। मियाल पर लटका हुआ बच्चा चित्र का अक्ष बनाता है जिसके एक तरफ़ छड़ी चलाते गुरुजी और दूसरी ओर कुछ दूरी पर डरे-सहमे छात्रों का झुण्ड। इस ख़ौफ़ को कुछ कम करने के लिए एक और कमरे का हिस्सा और उसमें टँगे कपड़ों को दिखाया गया है। शाला किसी कमरे में लगी है और बच्चे ताड़पत्र की जगह तख़्तों का इस्तेमाल कर रहे हैं। मगर यहाँ शिक्षण रुका हुआ है और हिंसक अनुशासनात्मक कार्यवाही ने उसकी जगह ले ली है।

अलेक्ज़ांडर डफ़ ने माना कि इस तरह के दण्ड न केवल अमानवीय हैं बल्कि वे बच्चों को उद्दण्ड बना देते हैं और उनमें शिक्षकों के प्रति दुर्भावना उत्पन्न कर देते हैं। वे उन तमाम तरीक़ों का भी वर्णन करते हैं जो छात्र गुरुजी से बदला लेने के लिए आजमाते हैं (जैसे– उनके हुक़्क़े

1. Alexander Duff (Editor), The state of Indigenous Education in Bengal and Behar, No. IV, Vol. II, Second Edition, Calcutta Review Vol. II, October–December, 1844, pp / 333–338.

में मिर्ची भर देना, रात को अँधेरे में पीटना, और काली माँ से प्रार्थना करना कि गुरुजी को जल्दी ऊपर ले जाएँ)। एक तरह से डफ ने देशज शालाओं को ख़ारिज़ करने के लिए और उनकी जगह आधुनिक सरकारी या मिशनरी स्कूलों को फैलाने के पक्ष में दण्ड-आधारित शिक्षण के तर्क का उपयोग किया।

उत्तर भारत की तरफ़ जाने से पहले हम दो फोटो और भी देखेंगे जो तमिलनाडु की देशज शालाओं को दर्शाते हैं। इन्हें तिण्णै या बाहरी बरामदे की शाला कहा जाता था।



चित्र 4. मदुरै ज़िले की एक तिण्णै शाला

दस छात्रों वाली यह शाला वैसे शायद ओटले के ऊपर लगती थी (चित्र 4), मगर वहाँ छायाचित्र के लिए ज़रूरी रोशनी की कमी के कारण नीचे धूप में लगी है। चित्र 2 के गुरुजी की तरह यहाँ के शिक्षक भी ताड़पत्र पर कुछ लिख रहे हैं। छात्रों के सामने ताड़पत्र की पुस्तकें बाँधकर रखी गई हैं, जिनसे वे पढ़ रहे हैं। बच्चे जितनी तल्लीनता के साथ पढ़ना दिखा रहे हैं, उससे लगता है कि वे छायाचित्र के लिए पोज़ कर रहे हैं। छायाचित्रों और चित्रों में यही अन्तर है कि छायाचित्रों के बनने में उन छात्रों व शिक्षकों की भी भागीदारी होती है और वे जैसे दिखना चाहेंगे वैसे दिखेंगे। चित्रों में चित्रकार अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र होता है।

चित्र 5 शायद एक शाला का ग्रुप छायाचित्र है। मन्दिर के पास अपने बड़े से घर के बाहर के ओटले में ब्राह्मण शिक्षक अपनी शाला चला रहे हैं और उनके तीस से अधिक छात्र तीन क़तार



चित्र 5. तिण्णै शाला

में ऊपर और नीचे बैठे हैं। एक पड़ोसी पुरुष सामने खड़ा है और दो-तीन बच्चियाँ पड़ोसी के घर के चबूतरे से ताक रही हैं। फ़ोटोग्राफ़र के काम के कारण शिक्षण कार्य स्थगित है। इस सेटिंग के आधार पर हमें तिण्णै शाला के रोज़मर्रा के काम के तरीक़े की कल्पना करना है।

दोनों छायाचित्रों से इस माध्यम की एक विशेषता समझ में आती है कि इन दोनों में शिक्षक की भूमिका अपेक्षाकृत दबी हुई है, उसकी छवि उतनी तेज़ी से नहीं उभरती जितनी शिल्पों या चित्रों में। इनमें छात्र और घर की पृष्ठभूमि पर ज़्यादा नज़रें टिकती हैं।

दक्षिण भारत के ये चित्र और छायाचित्र इस सम्भावना की ओर इशारा करते हैं कि अँग्रेजों के आगमन तक एक व्यापक देशज शिक्षा व्यवस्था विकसित थी, और यह भले ही काफ़ी अनौपचारिक रही हो उनमें बच्चों के प्रति हिंसा सहज थी। चित्र 5 की झाँकती बालिकाएँ बताती हैं कि इन छवियों में लड़कियाँ छात्रा के रूप में नहीं दिखती हैं। यानी अभी शालेय शिक्षा केवल बालकों के लिए थी। मनरो की रपटों से भी यही पता चलता है कि दक्षिण में केवल देवदासियाँ ही औपचारिक रूप से शिक्षित थीं। बाक़ी इच्छुक महिलाएँ अनौपचारिक तरीक़े से घर के अन्य लोगों से पढ़ना-लिखना सीखती थीं। दक्षिणी देशज शिक्षा के एक मुख्य पहलू अर्थात् वरिष्ठ छात्रों की सहायक के रूप में भूमिका इन चित्रों में नहीं दिखती है। सामिनाथ अय्यर और अन्य

विवरणों से हमें पता है कि शाला में वरिष्ठ छात्रों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण थी और इससे प्रेरित होकर ही एंड्रयू बेल साहब ने इंग्लैण्ड में इसके माध्यम से शिक्षा के ख़र्च को कम करने की वकालत की थी। अब हम उत्तर भारत से मिले कुछ चित्रों को देखें।

बनारस और बंगाल में

इंग्लैण्ड के विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय में बनारस में बने 11 चित्र संरक्षित हैं। ये चित्र ख़ासतौर पर शिक्षण कार्य से सम्बन्धित हैं और सम्भवतः एक ही कलाकार के द्वारा बनाए गए हैं। ऐसा माना जाता है कि इन्हें 1860 के आसपास बनाया गया था। इनमें से कुछ चित्र बच्चों से सम्बन्धित नहीं हैं इसलिए उन्हें हम इस अध्ययन से अलग रखेंगे।

इन चित्रों को बनाने वाला कोई उच्च कोटि का कलाकार नहीं था। शिक्षक और छात्रों को एक क़तार में पार्श्व दृष्टि में दिखाना उसके लिए ज़्यादा सुविधाजनक रहा होगा। शायद वास्तविक कक्षा इससे अधिक जटिल संरचना की रही होगी। फिर भी चार तरह की शालाओं में बुनियादी समानता के बावजूद अन्तर स्पष्ट हो जाता है। मुस्लिम शाला के मौलवी साहब को छोड़कर बाक़ी तीनों शिक्षक एक जैसे दिखते हैं, बस लेखन सिखाने वाली शाला के शिक्षक ने कुर्ता नहीं पहना है। मौलवी साहब को छोड़कर सभी के हाथ में छड़ी है और उसका उपयोग करते हुए शिक्षक कुछ सिखा रहे हैं। मौलवी साहब पढ़ा नहीं रहे हैं बल्कि हुक़्क़ा पीते हुए अपने छात्रों पर एक नज़र रखे हुए हैं। उनमें से दो छात्र पढ़ रहे हैं मगर बाक़ी तीन इधर-उधर ताक रहे हैं। सभी के पास किताब है और सभी सिर पर कुल्हा और विभिन्न तरह के कुर्ता-पायजामा या धोती और कमरबन्द पहने हुए हैं (चित्र 7)।


चित्र 6. लेखन शिक्षा


चित्र 7. मुस्लिम पाठशाला


चित्र 8. हिन्दू महाजन पाठशाला जहाँ हिसाब सिखाया जाता है


चित्र 9. ईसाई मिशनरी पाठशाला

जहाँ लिखना सिखाया जा रहा है (चित्र 6) वह शायद संस्कृत पाठशाला है- यहाँ शिक्षक सहित सभी बिना कुर्ता या कमीज़ के दिख रहे हैं। शायद शिक्षक के पास एक बन्द किताब रखी हुई है, छात्र अपनी-अपनी चटाई पर खड़िए से पाठ लिख रहे हैं। पहले छात्र ने गिनती लिखी है और बाक़ी छात्रों ने कुछ शब्द या वाक्य लिखे हुए हैं। जाहिर है कि सब अलग-अलग कुछ लिखने के बाद शिक्षक के अगले निर्देश के लिए उनकी ओर देख रहे हैं। छह में से चार छात्र चुटिया वाले हैं और दो छात्रों के खुले बाल हैं- किसी ने कुल्हा या टोपी नहीं पहना है। यह ध्यान देने योग्य है कि शिक्षक के कन्धे पर जनेऊ नहीं दिख रहा है और बिना चुटिया वाले लड़के आगे बैठे हैं। सम्भवतः वे ग़ैर-ब्राह्मण थे।

महाजन पाठशाला (चित्र 8) में पता नहीं क्यों, सभी खड़े हैं। यहाँ छात्रों में अपेक्षाकृत अधिक विविधता दिखती है- दो कमीज़ पहने हैं और बाक़ी केवल एक कन्धे पर गमछा लिए हैं। पाँच के हाथ में रंगीन तख़्तियाँ हैं मगर तीन के हाथ ख़ाली हैं। मिशनरी शाला (चित्र 9) की बैठक व्यवस्था कुछ अलग है, ज़मीन पर चटाई या गद्दा बिछाकर बैठने की बजाय शिक्षक तिपईया स्टूल पर और छात्र लम्बे बेंच पर बैठे हैं। इस शाला में छात्रों की विविधता को विशेष रूप से उभारने का प्रयास है। इनमें से दो तो निश्चित रूप से चुटिया वाले पण्डित हैं जिन्होंने कमीज़ नहीं पहनी है और सिर ढँका नहीं है। एक का तो जनेऊ भी स्पष्ट दिख रहा है। एक हरे पायजामा वाला छात्र शायद मुसलमान है। दो फ़ुल पैंट, शर्ट और खुले सिर वाले शायद ईसाई हैं। वे कक्षा में जूते पहने हुए हैं। सभी के हाथ में पाठ्यपुस्तक है और शिक्षक के निर्देश पर पहला छात्र पाठ पढ़कर सुना रहा है।

ज़ाहिर है कि इस शृंखला में चित्रकार एक विविधतापूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली को दर्शाना चाहता था, मगर साथ ही उनकी समानता पर भी ध्यान आकर्षित करवाना चाहता था। वह यह भी जताना चाहता था कि सभी प्रकार की शालाओं में विविध जाति व धर्म के लोग पढ़ रहे थे। इस शृंखला का अगला चित्र दण्ड से सम्बन्धित है और काफ़ी रोचक है।

इस चित्र (चित्र 10) में लगभग पाँच तरह के दण्ड दिखाए जा रहे हैं और इनमें से अधिकांश दण्ड ऐसे हैं जिनका वर्णन ग्रांट डफ़ कर चुके थे। एक बच्चे से शिक्षक छड़ी की मदद से पूछताछ कर रहे हैं और वह छात्र अपनी सफ़ाई काफ़ी आश्वासन के साथ दे रहा है। नीचे एक छात्र शायद दूसरे छात्रों के दण्ड का निरीक्षण कर रहा है और कुछ निर्देश भी दे रहा है। इस चित्र के एक टीकाकार जैक्वलीन हारग्रीव्स के अनुसार इनमें से कई दण्ड दरअसल योगासन मुद्राएँ हैं जिनका वर्णन योग सम्बन्धित साहित्य में भी मिलता है। एक तो वज्रासन या वीरासन पर बैठा है, एक अपने पंजों के अग्रभाग के बल



चित्र 10. अनुशासन और दण्ड

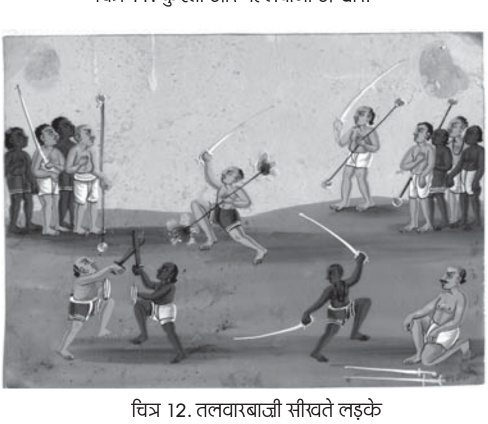
पर पालथी मारकर बैठा है, वग़ैरह। नीचे जो लड़का अपनी टाँगों को कान के पीछे बाँधकर और हाथों को जाँघों के ऊपर बाँधकर लेटा है, वह वास्तव में 'योगनिद्रासन' की मुद्रा में है जिसका वर्णन हठयोग साहित्य में मिलता है। सामने जो लड़का अपने हाथ बाँधकर बैठा है, शायद वह ऐसा ही कुछ आसन लगाने वाला है। तो हमें इस सम्भावना के बारे में विचार करना चाहिए कि देशज शालाओं के कई दण्ड वास्तव में योगासन सम्बन्धित क्रियाएँ हैं। हो सकता है कि यह मान्यता रही हो कि तपस्वी जिस तरीक़े से अपने शरीर और मन को नियंत्रण में लाते हैं उस तरीक़े से छात्र भी अपने उद्दण्ड व्यवहार से मुक्त हो सकते हैं (चित्र 10)।

इस श्रृंखला में कुछ और चित्र हैं जो शारीरिक शिक्षा से सम्बन्धित हैं- उनमें से तीन यहाँ दिए जा रहे हैं।

इन तीनों चित्रों में एक बार फिर हम देख



चित्र 11. कुश्ती और पहलवानी अभ्यास



चित्र 12. तलवारबाज़ी सीखते लड़के



चित्र 13. कबड्डी खेलते लड़के

सकते हैं कि विविध सामाजिक पृष्ठभूमि के लड़के इन गतिविधियों में हिस्सा ले रहे हैं। हमें याद रखना होगा कि बनारस न केवल विद्वानों की नगरी थी बल्कि पहलवानों और कुश्तीबाज़ों की भी नगरी थी। एक सुसभ्य नागरिक की तैयारी में पढ़ना-लिखना, हिसाब वग़ैरह के साथ में व्यायाम, शस्त्रकला और खेलकूद भी महत्त्वपूर्ण थे। ये तीन चित्र शिक्षा के आयाम को और विस्तृत कर देते हैं और इन विधाओं के विविध शिक्षण तरीक़ों से हमें परिचित कराते हैं, जो अभ्यास और प्रयोग-आधारित हैं।

देशज शिक्षा का एक अन्तिम चित्र मैं यहाँ पेश करना चाहता हूँ जिसमें स्पष्ट रूप से उभरते आधुनिक अँग्रेज़ी स्कूल का प्रभाव दिखता है। यह एक तरह से देशज सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा का रूपान्तरण और ख़ात्मा भी है।



चित्र 14. चैतन्य महाप्रभु शाला में- पटचित्र, बीरभूम, बंगाल
(आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय में संरक्षित)

बंगाली भक्त सन्त चैतन्य महाप्रभु के बचपन के बारे में कई किस्से-कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कुल मिलाकर उनका बचपन काफ़ी उद्दण्डता और खेल तथा झगड़ों में बीता था। अक्षराभ्यास संस्कार के बाद उन्हें पाठशाला भेजा गया और कुछ समय बाद उन्हें वहाँ से हटा लिया गया। कहा जाता है कि वे पाठशाला में सिर्फ़ कृष्ण के नाम लिखते थे। उपनयन संस्कार के बाद वे वेद, व्याकरण और तर्कशास्त्र सीखने के लिए एक टोल (बंगाली देशज शाला) में भेजे गए और अन्त में अपने सोलहवें साल में उन्होंने अपना ही टोल स्थापित कर लिया था।

बंगाल और उड़ीसा की पारम्परिक लोक कला का अंग है पटचित्र। यायावर, पौराणिक कथावाचक या गायक कथा सुनाने के साथ-साथ इन चित्रों का प्रदर्शन भी करते थे। इसे पट-संगीत कहा जाता था। चैतन्य की जीवनी पर आधारित इस चित्र (चित्र 14) में देशज शाला का परिवर्तित रूप दिखता है। शिक्षक पहले की ही तरह छड़ी लिए हुए हैं, मगर बैठे हैं आधुनिक स्कूल के मेज़-कुर्सी पर। मेज़ पर दवात-क़लम है और शाला में काग़ज़ व क़लम का उपयोग हो रहा है। शिक्षक जूते पहने हुए हैं। छात्र फ़र्श पर क़तार में बैठे हैं और एक-एक करके खड़े होकर शिक्षक को अपना लेखन दिखा रहे हैं।

बनारस के 'कम्पनी क़लम' के चित्र और बीरभूम का पटचित्र दोनों एक नए तरह की शाला की ओर संक्रमण दर्शाते हैं। इनमें छात्रों द्वारा स्वाध्याय का पुट कम है और शिक्षक का निर्देशन और छात्रों के व्यवहार की एकरूपता प्रधानता लिए है। हालाँकि यह परिवर्तन अभी पूरा नहीं हुआ है। सभी छात्र एक ही चीज़ अभी भी नहीं लिख रहे हैं।

संक्रमण यूरोप में भी

यह संक्रमण यूरोप में उद्योगीकरण के बाद हुए बदलाव की ओर भी इशारा करता है। यहाँ हम दो विपरीत चित्रों की मदद से इस संक्रमण को देख सकते हैं। पहला चित्र लगभग 1510 में प्रसिद्ध जर्मन पुनर्जागरण कलाकार अलब्रेक्ट ड्यूरर का बनाया हुआ है (चित्र 15)। ड्यूरर लकड़ी को उकेरकर चित्र (वुडकट) बनाते थे जिससे छपाई की जा सकती थी।



चित्र 15. अलब्रेक्ट ड्यूरर, स्कूल मास्टर अपनी छड़ी का उपयोग कर रहे हैं (ब्रिटिश संग्रहालय में संरक्षित)

ज़ाहिर है कि यह एक ग्रामीण शाला है जहाँ खुले में पेड़ के नीचे कक्षा लगी हुई है। शिक्षक और छात्र दोनों बैंचों पर बैठे हैं, पर शिक्षक कुछ ऊँचाई पर। चार-पाँच छात्र अलग-अलग मुद्रा में बैठे हैं और उनमें से एक कॉपी में कुछ लिख रहा है। शिक्षक के एक हाथ में पुस्तक है जो प्रयास करने पर ही दिखती है, मगर दूसरे हाथ की छड़ी पूरे चित्र पर हावी है। शायद उसका निशाना सामने बैठे छात्र का सिर है और वह अपना सिर बचाने के लिए झुक रहा है। इसकी तुलना हम उन्नीसवीं सदी के एक चित्र से करेंगे जिसमें उद्योगीकरण का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

1839 में बने इस स्कूल का चित्र हमें उस समय उभर रहे कारख़ानों का आभास देता है। सैकड़ों बच्चे क़तार में बैठे पढ़ रहे हैं। एक शिक्षक



चित्र 16. 'फैक्टरी' स्कूल

व्यवस्था, चाहे वह यूरोप की हो या भारत की, उनसे दो-तीन बातें उभरकर आती हैं– पहली तो यह कि उनमें बहुत कम बच्चों को शिक्षा मिलती थी- लगभग पाँच से 25 के बीच। एडम के अनुसार बंगाल के अधिकांश ज़िलों में औसतन पाँच या छह छात्र ही एक शिक्षक के पास पढ़ते थे। विरले ही दस से अधिक छात्र होते थे। दूसरी बात यह है कि इनमें शिक्षक की प्रधानता तो थी, मगर हर बच्चा अपना ही कुछ कर रहा होता है, चाहे वह स्वाध्याय हो या लेखन या बोर होकर इधर-उधर ताकना या मस्ती करना। कक्षा पर शिक्षक का पूर्ण नियंत्रण या संचालन या फिर यूँ कहें कि एकीकृत शिक्षण प्रक्रिया नहीं दिखती है। तीसरी बात है अनुशासन बनाए रखने में शारीरिक दण्ड का खुला उपयोग। उद्योगीकरण के बाद आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में इन तीनों ही पक्षों में बदलाव आता है। शिक्षा धीरे-धीरे सार्वभौमिक होती जाती है, और एक मास्टर पर दर्जनों या दर्शाए गए चित्र जैसे सैकड़ों छात्र सौंप दिए जाते हैं। साथ-साथ शिक्षण कार्य का केन्द्रीयकरण और एकरूपीकरण होता जाता है, और छात्रों की गतिविधियों में भी एकरूपता आने लगती है। दण्ड और हिंसा ग़ायब तो नहीं हो जाती है, पर खुले रूप में प्रदर्शित नहीं होती। उसकी जगह एक व्यवस्थागत नियंत्रण और अनुशासन हावी हो जाता है जो कि प्रच्छन्न हिंसा के बिना नहीं सम्भव है। हिंसा का रूप बदल जाता है और शायद छात्रों के ज़हन में आत्मसात हो गया होता है। शिक्षकों व छात्रों के बीच एक औपचारिक दूरी बन जाती है, जो तिपाही या कुर्सी-टेबिल का रूप ले लेती है।

दूर पर ऊँचे आसन पर बैठा है और उसके ऊपर घड़ी लगी हुई है। घड़ी नए कारख़ाने और स्कूल दोनों की गतिविधियों को नियंत्रित करने लगी थी। कारख़ाने के फ़ोरमैन जैसे मॉनिटर हर क़तार पर निगरानी रखते हुए खड़े हैं। किसी के हाथ में छड़ी नहीं है और कोई हिंसा होते हुए भी नहीं दिख रही है, मगर पूरा माहौल अनुशासित है और सभी (या लगभग सभी) अपने निर्धारित काम एकरूपता के साथ कर रहे हैं। एक देर से आने वाला बालक सिर झुकाकर एक कोने में खड़ा है। मध्यकालीन शाला आधुनिक कारख़ाना बन गयी है।

रोचक तथ्य यह है कि इस मॉनिटर-आधारित व्यवस्था के प्रवर्तक एंन्ड्रयू बेल (1753-1832) मद्रास में लगभग दस साल रहे और वे यहाँ की देशज शिक्षा में मॉनिटरों की भूमिका से बहुत प्रेरित हुए थे। वरिष्ठ छात्रों द्वारा नए छात्रों को सफलतापूर्वक पढ़ाने को देखकर उन्हें लगा कि उन्हें बरतानिया में कम ख़र्चे पर सार्वजनिक शिक्षा का सुराग़ मिल गया। बेल शारीरिक दण्ड के ख़िलाफ़ थे और मानते थे कि इससे बच्चे विकृत हो जाते हैं। ऊपर दिया गया चित्र शायद इसी कल्पना की उपज थी। बेल की व्यवस्था को चर्च के शिक्षाविदों ने बहुत पसन्द किया और कहा जाता है कि इसी सिद्धान्त के आधार पर इंग्लैण्ड और अमरीका में लगभग 12,000 शालाएँ स्थापित हुईं।

मध्यकालीन और पूर्व आधुनिक शिक्षा

★

इन तीन आलेखों का उद्देश्य है इन उपलब्ध

चित्रों की ओर ध्यान खींचना और उन्हें समझने के लिए कुछ तरीक़े सोचना व कुछ प्रारम्भिक विचार साझा करना। मैं आशा करता हूँ कि और लोग इनका विधिवत अध्ययन करके शिक्षा के बदलते स्वरूप और अर्थ पर नया प्रकाश डालेंगे और नए अर्थ गढ़ने में मदद करेंगे।

सन्दर्भ

Archer, Mildred, Company Paintings: Indian Paintings of the British Period. London : Victoria and Albert Museum, 1992.

धर्मपाल, रमणीय वृक्ष, 18वीं सदी में भारतीय शिक्षा, (अँग्रेजी से अनुवाद) पुनरुत्थान ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2016

Alexander Duff (Editor), The state of Indigenous Education in Bengal and Behar, No. IV, Vol. II, Second Edition, *Calcutta Review* Vol. II, October – December, 1844,

Jacqueline Hargreaves, 'Visual Evidence for postures as punishments in Indian Schools'https://www.theluminescent.org/2017/05/

पाँच बजे की तिण्णै शाला *चकमक,* जून 2013, पृष्ठ 24–26

उ वे स्वामिनाथ अय्यर, *मेरी जीवनी* (अनुवाद – आन्नदी रामनाथन्) साहित्य अकादमी, दिल्ली 1970

चित्रों के स्रोत

चित्र 1 : istock इमेज गैलरी

चित्र 2 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, http://collections.vam.ac.uk/item/O431447/a–class–of–children–painting–unknown/

चित्र 3 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, http://collections.vam.ac.uk/item/O431448/a–child–painting–unknown/

चित्र 4 : http://eraeravi.blogspot.com/2015/10/1910.html

चित्र 5 : अज्ञात

चित्र 6 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:8/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427490/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 7 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:10/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427488/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 8 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:1/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427497/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 9 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:5/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427493/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 10 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:7/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427491/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 11 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum, 4674:9/(IS)http://collections.vam.ac.uk/item/O427489/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 12 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum4674:6/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427492/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 13 : South & South East Asia Collection, Victoria and Albert Museum 4674:4/(IS).http://collections.vam.ac.uk/item/O427494/one–of–eleven–paintings–depicting–painting–unknown/

चित्र 14 : आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय में संरक्षित

चित्र 15 : डेट्रायट इंस्टिट्यूट ऑफ़ आर्ट में संरक्षित https://www.dia.org/art/collection/object/school–master–43124

चित्र 16 : http://www.schoolsmatter.info/2011/12/in–early–19th–century–efficiency–zealot.html

---

सी एन सुब्रह्मण्यम पिछले तीन दशकों से एकलव्य के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े रहे हैं। वर्तमान में सेवानिवृत्त हैं और इतिहास के बारे में बच्चों और शिक्षकों के लिए लिखने में रुचि रखते हैं।
सम्पर्क : subbu.hbd@gmail.com